P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4* (Part-1) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आर्थिक विकास का सामाजिक संरचना पर प्रभाव

जयराम बैरवा
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

सामाजिक जगत कई पक्षों से बना है– जैसे आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक इत्यादि। इन सभी पक्षों का विश्लेषण एक दूसरे से पृथक रूप में किया जा सकता है, परन्तु वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस अर्थ में संरचनात्मक प्रभाव का अध्ययन करते समय हम आर्थिक विकास के पक्ष की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। आर्थिक विकास और संरचनात्मक प्रभाव, जिसमें आर्थिक विकास का परिवार, विवाह, नातेदारी जैसी सामाजिक संस्थाओं एवं जातिय संरचना में परिवर्तन का अध्ययन किया गया है। आर्थिक विकास और संरचनात्क प्रभाव के बीच लम्बे समय से समाजशास्त्रीयों का अध्ययन विषय रहा है। अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों, नवोद्भूत, उद्यमोन्मुखी, कृषि का प्रौद्योगिकीय और परिवार, विवाह, नातेदारी एवं जातिय सरंचना के बीच निकटता का सम्बन्ध है। सभी व्यक्तियों की आर्थिक समस्याऍं होती हैं। एक व्यक्ति के रूप में हम किस प्रकार जीवोकोपार्जन करते हैं, यह जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है। उसी प्रकार किसी समाज का सबसे प्रमुख तथ्य यह है कि इसके सदस्यगण अपने भोजन का उत्पादन एवं वितरण किस प्रकार करते हैं। इस तरह आर्थिक उत्पादन समाज का मौलिक कार्य है और यह सामाजिक संरचना के ढाँचे को निर्धारित करने में महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाता है।

मुख्य शब्द : अर्थव्यवस्था, आर्थिक समस्याऍं।

प्रस्तावना

शोध में वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा विषय से सम्बन्धित सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं, प्रकार्यात्मक सम्बन्धों, कार्य–कारणता के बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करना है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है।

1. आर्थिक विकास से सामाजिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव को मालुम करना।
2. ग्रामीण समाज में आधुनिकीकरण की प्रकिया को किन–किन क्षेत्रों में स्वीकारा एवं अस्वीकारा है तथा साथ ही यह ज्ञात करना है कि यदि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को लोग अपना रहे हैं, तो इससे परिवर्तन एवं विकास हुआ है या नहीं हुआ है।
3. आर्थिक विकास में आधुनिकीकरण की क्या भूमिका है जैसे आदि तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
4. विवाह एवं परिवार के बदलते प्रतिमानों का मालुम करना है। विवाह में परिवर्तन के कौनसे कारण उत्तरदायी हैं, विवाह अपनी ही जाति में करना पसन्द करते हैं या अन्तर जातिय विवाह करना पसन्द करते हैं। विवाह की औसत आयु में परिवर्तन आया है या नहीं।
5. विवाह में दहेज की प्रवृति कैसी है। विवाह एक सामाजिक समझौता या धार्मिक संस्कार है, लोगों में तलाक के प्रति क्या राय है? जीवन साथी के चयन के तौर तरीके में क्या बदलाव आया है? विवाह के रीति–रिवाजों में क्या परिवर्तन आया है? लोग किस प्रकार के विवाह को अच्छा मानते हैं।
6. परिवार की प्रकृति कैसी है, लोग संयुक्त परिवार को अच्छा मानते है या एकाकी परिवार को, साथ ही इनमें से कौनसा परिवार में अधिक विकास होता है। परिवार की संरचना एवं प्रकार्य में से किस क्षेत्र में बदलाव अधिक हो रहा है। ग्रामीण समाज के लोग परिवार कल्याण कार्यक्रम या परिवार नियोजन को उपयोग में ले रहे है या नहीं।
7. परिवार में परिवर्तन एवं विकास के लिए महिलाओं की क्या भूमिका रही है? परिवार में महिलाओं के सामने कौन–कौनसी समस्याऐं हैं जिसके कारण वह

स्वतन्त्र रूप से न तो कोई कार्य कर सकती है और न ही विचरण कर सकती है आदि के बारे में जानकारी करनी।

8. कृषि एवं अन्य व्यवसायों के द्वारा उत्पन्न आर्थिक विकास में योगदान को मालूम करना।
9. ग्रामीण समाज के लोग कृषि कार्यों में मशीनीकरण का प्रयोग करते हैं या नहीं, क्या कृषि का प्रति हेक्टेयर का उत्पादन में वृद्धि हुई है। कृषि में सिंचाई की व्यवस्था क्या है? गाँवों में किस प्रकार की फसलों की अधिक बुवाई करते हैं तथा वर्ष में कितनी फसलों की बुवाई करते हैं।
10. फसलों को बेचने पर क्या इसका उचित मूल्य प्राप्त होता है। कृषि में कौन–कौन से रासायनिक खादों को प्रयोग करते हैं, कृषि कार्य के साथ और कौन से कार्य करते हैं।
11. महिलाओं की कृषि कार्य में क्या सहयोग है? सरकार के द्वारा चालू की गई कृषि बीमा योजना, फसल का उचित मूल्य, सरकारी मूल्यों के आधार पर फसल को क्रय करना आदि योजनाओं का लाभ मिल पा रहा है या नहीं। क्या कृषि के साथ–साथ पशुपालन एवं डेयरी उद्योग से ग्रामीण समाज का विकास हुआ है?

आर्थिक विकास अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य शब्दों में आर्थिक विकास का अर्थ होता है कि 'वह प्रक्रिया जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की प्रतिव्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय आय में दीर्घकालिन वृद्धि है। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से आर्थिक विकास का सम्बन्ध होता है। रोबर्ट फैरिस के अनुसार ''आर्थिक विकास वास्तविक आय में प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि है जो भले ही किसी भी साधन से हो।'' नोवॉक डेविड– के अनुसार ''यह वस्तु एवं सेवाओं के प्रति व्यक्ति उपभोग में निरन्तर एवं अत्यधिक वृद्धि है।'' आर्थिक वस्तुओं का अत्यधिक उपभोग तभी सम्भव है, जबकी आर्थिक वस्तुओं का उत्पादन भी अत्यधिक हो। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास, आर्थिक वस्तुओं के उत्पादन व वितरण में जड़ या निर्जीव शक्ति और तकनीकी के प्रयोग के अतिरिक्त, श्रम गतिशीलता, विस्तृत शिक्षा व्यवस्था आदि भी सम्मिलित हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास एक प्रकार का आर्थिक उत्पादन का तर्क संगतिकरण है, जिसमें प्रतिव्यक्ति आय, उच्च साक्षरता, जन्म के अवसर पर जीवन की ऊँची सम्भावनाएँ, कृषि में संलग्न श्रम शक्ति का निम्न अनुपात अर्थात् कृषि का मशीनीकरण प्रतिव्यक्ति बिजली किलोवॉट का उच्च उत्पादन आदि के आधार पर होने वाले विकास आर्थिक विकास कहा जाता है।

आर्थिक विकास की विशेषताएं

आर्थिक विकास एक प्रकिया है– इस बात पर बल देना आवश्यकत है कि आर्थिक विकास एक ऐसी प्रकिया है, जिसमें कुछ शक्तियों जो एक दूसरे से सम्बन्धित है, कारण और कार्य के रूप में क्रियाशील होती है। अतः हमें आर्थिक विकास की परीक्षा एक प्रगतिशील प्रौग्राम के रूप में करनी चाहिये जिसके फलस्वरूप यह किसी देश की जनसंख्या विशेष कर, निर्धन जनसंख्या के लिए अधिक अर्थपूर्ण सिद्ध हो सके। इस प्रकार आर्थिक विकास की कल्पना विकास की कुछ शर्तों या इसके लक्षणों की सूची के रूप में न करके एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में करनी होगी जिसके कारण और परिणाम के आपसी सम्बन्ध स्पष्ट हो सके।

1. निर्धनता को दूर करना आर्थिक विकास का प्रधान लक्ष्य है– आर्थिक विकास की मूल प्रेरणा इन राष्ट्रों में निर्धनता दूर करने के लक्ष्य से उत्पन्न हुई है। इसलिए आवश्यक है कि केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि को लक्ष्य माना जाता है, तो यह सम्भव है कि कुल उत्पादन में वृद्धि तो हो जाये परन्तु प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि न हो। यदि राष्ट्रीय आय की वृद्धि–दर जनसंख्या की वृद्धि–दर के बराबर है, तो प्रतिव्यक्ति आय स्थिर रहेगी। यदि जनसंख्या की वृद्धि–दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि–दर से अधिक है, तो प्रतिव्यक्ति आय कम हो जायेगी। इन दोनों परिस्थितियों में या तो जीवन–स्तर स्थिर रहेगा या गिर जायेगा। इसे आर्थिक विकास समझना हमारी भूल होगी। अतः आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है की राष्ट्रीय आय की वृद्धि–दर जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक हो ताकि जनसंख्या का जीवन स्तर में सुधार हो सके। यदि ऐसा होता है, तो गरीबी दूर करने की प्रक्रिया चालू हो जायेगी।
2. आर्थिक विकास का अर्थ वास्तविक आय में दीर्घकालिन वृद्धि है– आर्थिक विकास का अर्थ वास्तविक आय में दीर्घकाल में लगातार वृद्धि है, न की अल्पकाल में वृद्धि हो जो की सामान्यतः व्यापार चक्रों के तेजी के काल में व्यक्त होती है। आर्थिक विकास के मूल में बात यह है कि राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि की प्रवृत्ति कम से कम दो या तीन दशक तक बनी रहनी चाहिये। तभी यह बात अधिक विश्वास से कही जा सकती है कि आर्थिक विकास प्रोन्नत हो रहा है। इस दृष्टि से पंचवर्षीय योजनाओं को तो विकास प्रक्रिया के मील के पत्थर के रूप ही कल्पित करना होगा। जब तक कई पंचवर्षीय योजनाओं के परिणामस्वरूप यह प्रवृत्ति टिकाऊ न बन जाये, तब तक यह कहना ठीक न होगा कि आर्थिक विकास हो रहा है या देश अपनी मंजिल की और बढ़ रहा है। इसमें हम दीर्घकाल में प्रतिव्यक्ति वास्तवित आय की निरन्तर वृद्धि पर बल देना चाहते हैं। आर्थिक विकास को प्रारम्भ करने और उसे दीर्घकाल तक बनाये रखने के कठिन कार्य में स्पष्ट भेदभाव समझना अनिवार्य है।
3. आर्थिक विकास का उपलक्ष्य आर्थिक असमानता में कमी लाना है– आर्थिक विकास के बहुत से विशेषज्ञ अब इस बात पर सहमत हैं कि चाहे आर्थिक विकास का प्रधान लक्ष्य प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि है परन्तु इसके साथ एक अनिवार्य उपलक्ष्य के नीचे रहने वाली जनसंख्या परम और सापेक्ष रूप में काम करनी होगी। कई अर्थव्यस्थाओं में यह अनुभव किया गया है कि चाहे वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हुई, परन्तु जनसंख्या की वृद्धि और आर्थिक विकास के

लाभों के असमान वितरण के कारण निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या की मात्रा में वृद्धि हुई है।

4. आर्थिक विकास के कुछ उपलक्ष्य है– उपभोग का न्यूनतम स्तर, बेरोजगारी को समाप्त करना विभिन्न क्षेत्रों का विकास एवं समृद्धि में भारी अन्तरों को कम करना अर्थव्यवस्था का विशाखन (Diversification) और आधुनिकीकरण करना है। इन सभी उप लक्ष्यों के मूल में यह बात निहित है कि आर्थिक विकास किसी एक क्षेत्र या कुछ क्षेत्रों या किसी एक वर्ग या कुछ उच्च वर्गो तक ही सीमित न हो बल्कि इसका प्रभाव व्यापक रूप से समग्र जनसंख्या पर पड़े। इस प्रकार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विस्तार होना चाहिये ताकि पारस्परिक अर्थव्यवस्था को आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित किया जा सके।

आर्थिक विकास का मापदण्ड

यह माना जाता है कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना जाना चाहिये। इस दिशा को प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये। कुछ विद्धानों की मान्यता है कि आर्थिक विकास का मापदण्ड शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन को माना है। कार्ल मार्क्स का मत था कि समाजवाद ही आर्थिक विकास का सर्वोत्तम मापदण्ड है। जे.एस. मिल का विचार है कि सहकारिता आर्थिक विकास का मापदण्ड है। आधुनिक अर्थशास्त्रीयों तथा सामाजिक विकास के विचारकों का मत है कि आर्थिक विकास का मापदण्ड निम्नलिखित होना चाहिये।

राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि को देखते हुये यह सम्भव है कि राष्ट्रीय आय बढ़ने पर भी प्रतिव्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी नहीं हो। लेकिन प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि आर्थिक विकास एक प्रमुख चिन्ह हैं।

आय का समान वितरण

आर्थिक विकास तभी उचित कहा जायेगा जब आय का वितरण न्यायोचित एवं समान होगा। यदि राष्ट्रीय आय बढ़ रही है। लेकिन उसका अधिक भाग कुछ ही लोगों तक सीमित रहता है तो वह राष्ट्र गरीब ही बना रहेगा। इस प्रकार आर्थिक विकास की अमीर एवं गरीब के बीच बढ़ती हुई खाई को समाप्त करना होगा। तब जाकर हम आर्थिक विकास की न्यायोचित बात कर सकते हैं।

आर्थिक कल्याण एवं निर्धन वर्ग की आर्थिक स्थिति का विकास

निर्धन वर्गों की उन्नति आर्थिक विकास का लक्षण होना चाहिये।

व्यवसायिक ढॉचा

जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता जाता है वैसे–वैसे कृषि एवं प्राथमिक व्यवसायों में लगे व्यक्तियों की संख्या का अनुपात घटता जाता है और खनिज व्यवसाय यातायात, वितरण तथा सरकारी नौकरीयों में लगे व्यक्तियों की संख्या का अनुपात बढ़ता है।

विकास की दर

यह दो प्रकार की होती है ; सामान्य विकास दर एवं वास्तविक विकास दर। सामान्य विकास दर प्रत्याशित दर है जो प्रतिवर्ष हुआ करता है, वास्तविक विकास दर प्रचलित दशा है। यदि सामान्य विकास दर और वास्तविक विकास दर सामान्य है तो अर्थ व्यवस्था विकसित कही जायेगी। यदि सामान्य विकास दर, वास्तविक विकास दर से अधिक है तो अर्थ व्यवस्था विकसित कही जायेंगी। यदि सामान्य विकास दर वास्तविक विकास दर से कम है तो अर्थ व्यवस्था अर्द्ध विकसित कही जायेगी।

आर्थिक विकास के कारक

कार्ल मार्क्स सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन की प्रविधि द्वारा सामाजिक जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पहलू निर्धारित होते हैं। मार्क्स के अनुसार उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन होने पर आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन सभी सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित करते हैं। मार्क्स ने बताया है कि यदि उत्पादन के साधनों को उनका प्रतिफल प्राप्त हो जाता हैं तो समाज–व्यवस्था संगठित होती है, परन्तु ऐसा होता नहीं है। उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का एकाधिकार हो जाता है। परिणामस्वरूप असन्तोष की स्थिति उत्पन्न होती है जो क्रांति के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार जब उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन आता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है।

आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को दो प्रमुख भागों में बॉटा जा सकता है– 1. आर्थिक कारक 2. अन्य कारक।

आर्थिक कारक

आर्थिक संस्थाओं का विकास

इसके अन्तर्गत सम्पत्ति तथा अनुबन्ध में विकास आवश्यक है लेविस का कहना है कि सामुदायिक विकास के लिए आर्थिक संस्थाओं में विकास आवश्यक है। डेविड ने लिखा है कि आर्थिक संस्था से तात्पर्य उन प्रमुख विचारों, मान्यताओं एवं परिस्थितियों से हैं जो प्रत्येक समाज में सीमित वस्तुओं के स्थिति का निर्धारण करती है। जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए पर्यावरण के उपयोग से सम्बन्धित प्रविधियों, विचारों एवं प्रथाओं के ताने–बाने को आर्थिक संस्था कहते हैं। राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक संस्थाओं में आवश्यक संशोधन किया जाये।

मानवीय शक्ति का विकास

किसी भी देश की जनसंख्या मनवीय शक्ति के रूप में जानी जाती है। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग आर्थिक उत्पादन क्रिया में भाग ले। जनसंख्या आर्थिक विकास के लिए सहायक होती है क्योंकि इसी के द्वारा (A) श्रम की पूर्ति (B) मांग में वृद्धि तथा (C) पूंजी निर्माण में योग सम्भव हो पाता है।

प्राकृतिक साधन

देश का या गाँवों का आर्थिक विकास प्राकृतिक साधनों प्रत्यक्ष रूप से आश्रित हैं। जिन गाँवों में या देशों में प्राकृतिक सम्पदा अधिक है वहाँ थोडे से प्रयत्न के कारण ही आर्थिक विकास सम्भव हो पाता है। इन प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग विशेष महत्त्व रखता है। लेविस ने लिखा है कि ''एक देश जो आज साधनों में गरीब माना जाता है, कुछ समय बाद उसे धनी माना जा

सकता हैं, यदि ज्ञात साधनों का उपयोग नये ढंग से हो।''

प्रौद्योगिकी विकास तथा नवीन आविष्कार

आर्थिक विकास के लिए कृषि एवं अन्य कार्यों प्रौद्योगिकी का ज्ञान तथा अन्य क्षेत्र में नये आविष्कार आवश्यक है। जहाँ नवीनीकरण में आस्था नहीं है। वहाँ विकास की गति तेज नहीं हो पाती है।

व्यवसायिक ढॉचा

उचित व्यवसायिक ढाँचा भी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। इसे तीन वर्गों में बॉटा जाता हैं (A) कृषि से सम्बन्धित प्राथमिक ढाँचा (B) उद्योगों से सम्बन्धित, द्वैतीयक वर्ग कहते हैं और (C) सेवाओं से सम्बन्धित, इसे तृतीय वर्ग कहते हैं। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि लोग कृषि कार्यों से हट कर अन्य कार्यों को करें।

अन्य कारकों में

सामाजिक कारक

इसके अन्तर्गत प्रथाओं, परम्पराओं, जनरीतियों, विचारों तथा मनोवृत्तियों को सम्मिलित किया जाता है। समाज की प्रथाऍ यदि नये परिवारों के अनुरूप हैं तो अवश्य आर्थिक विकास होगा। मनुष्य की आदत तथा उसके समूह में होने वाली गतिविधियॉ आर्थिक विकास में विशेष महत्त्व रखती है। नोल्स ने लिखा है कि ''इग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रांति का सारा श्रेय वहाँ के लोगों के विचारों तथा भावनाओं का है।'' सामाजिक संस्थाएं जैसे परिवार, जाति, वर्ग आदि का भी आर्थिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। नगरों में अधिक विकास अधिक अंशों में हुआ है। इसका कारण वहाँ की अनुकूल सामाजिक परिस्थितियॉ कहा जा सकता है। गाँवों में प्रथाओं, परम्पराओं जनरीतियों आदि के आधार पर सामाजिक परिस्थितियॉ काम करती है जो आर्थिक विकास में सहायक नहीं होती है।

धार्मिक कारक

धार्मिक संस्थाऍ किस प्रकार की है तथा समाज में प्रचलित धर्म की नीति क्या चाहती है? मैक्स वेबर ने विश्व के छः महान धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला हैं कि आर्थिक विकास उस समाज के धर्म से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों ने भी यहाँ के आर्थिक विकास को प्रभावित किया है। धर्मान्धता के कारण भी यहाँ आर्थिक विकास में बाधा पड़ी है। लेविस ने लिखा है कि धार्मिक संस्थाऍ समाज के आर्थिक विकास में सहायक तथा बाधक दोनों ही होती है।

राजनीतिक कारक

सरकार का स्वरूप किस प्रकार का है, तथा उसमें मानवीय स्वतन्त्रता किस अंशों की है। इसका भी आर्थिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक स्थिरता आर्थिक विकास के लिए जरूरी है। जिन समाजों में राजनीति नहीं है वहाँ आर्थिक विकास की गति बहुत मंदी रहती है। जिस समाज का आर्थिक विकास होता वह राजनीति स्थिरता का परिणाम है।

सांस्कृतिक कारक

संस्कृति तात्पर्य जीवन की सभी गतिविधियों से होता है। कला, साहित्य, धर्म, नृत्य, संगीत, आदि आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यदि सांस्कृतिक कारकों में आधुनिकता आती है तो आर्थिक विकास होना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक कारकों के साथ अन्य सामाजिक कारकों की सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परिवार

परिवार सभी सामाजिक समूहों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और व्यापक समूह है। परिवार जैसे समूह के अभाव में मानव समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। बड़े या छोटे आदि या सभ्य, पुरातन या आधुनिक सभी समाजों में प्रजनन और बच्चों के पालन–पोषण हेतु परिवार रूपी समूह की आवश्यकता रही है। यही एक स्थायी और सार्वभौमिक व्यवस्था है। परिवार के कई स्वरूप होते हैं। जैसे एकाकी परिवार, विस्तृत परिवार एवं संयुक्त परिवार।

जहाँ तक परिवार की परिभाषा का प्रश्न है, मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि ''परिवार एक ऐसा समूह है जो स्त्री–पुरूष के यौन सम्बन्ध पर आधारित है और समूह इतना सुनिश्चित है और टिकाऊ होता है कि इसके माध्यम से प्रजनन क्रिया की जाती हो, बच्चों के पालन–पोषाण की समुचित व्यवस्था होती है।'' एस.सी. दुबे ने लिखा है कि ''परिवार में स्त्री और पुरूष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती है, उनमें से कम से कम दो विपरित यौन व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति रहती है और संसर्ग से उत्पन्न संतान मिलकर परिवार का निर्माण करते हैं।''

संक्षेप में, हम परिवार को जैविकीय सम्बन्धों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। जिसमें माता–पिता और बच्चे होते हैं तथा जिनका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन संतुष्टि और प्रजनन, समाजीकरण और शिक्षण आदि की सुविधाऍ जुटाना है तथा एक संस्कृति का निर्माण करता है।

गाँवों में मुख्यतः संयुक्त परिवार की संख्या अधिक है, लेकिन आर्थिक विकास से शिक्षा का प्रसार होने एवं रोजगार के लिए बाहर जाने तथा नगरीकरण के कारण गाँवों के संयुक्त परिवार अब एकाकी परिवारों का रूप धारण कर रहे हैं। एकाकी या मूल परिवार आकार और संगठन की दृष्टि से छोटा होता है। इनका संगठन पति–पत्नी एवं उन पर आश्रित बच्चों के योग से निर्मित होता है, इन परिवारों के अन्दर गहरी अन्तःक्रिया होती है। इसलिए विचारों, भावों तथा क्रियाओं का आदान–प्रदान उन्हीं के बीच सीमित रहता है। ऐसे परिवारों में बच्चे वयस्क होते ही अपना पृथक मूल परिवार का निर्माण कर लेते हैं।

आर्थिक विकास एवं परिवार प्रणाली

ग्रामीण समाजों में मुख्य व्यवसाय कृषि है, कृषि प्रधान समाज में परिवार एक आर्थिक इकाई के रूप में काम करती है। परिवार का स्वरूप आम तौर पर सत्तावादी स्थिति एवं विस्तृत होता है। पुत्र अपने पिता के काम को

विरासत के रूप में प्राप्त करता है। स्त्री और पुरूषों के बीच काम का स्पष्ट बंटवारा होता है। लेकिन आज बदलती हुई परिस्थितियों एवं आर्थिक विकास से परिवार में परिवर्तन हो रहा है।

वास्तविकता यह है कि पारिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन को आर्थिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन से जोड़ा जा सकता है। गाँवों की आर्थिक व्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि पर आधारित होने से संयुक्त प्रधानता पायी जाती है। कृषि विकास के पूर्व आदिम अर्थ व्यवस्था वाले समाज में एकाकी परिवार की प्रधानता थी। लेकिन जैसे–जैसे ग्रामीण समाज अपने कृषि स्तर से आगे बढ़ने लगा तो एकाकी परिवार फिर बढ़ने लगे हैं। दूसरे शब्दों में एकाकी परिवार आदिम एवं आधुनिक अर्थव्यवस्था की विशेषता है तो संयुक्त परिवार कृषि प्रधान समाज की, इसको रिचार्ड, आर. क्लिटोन ने निम्न रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट किया है।

आर्थिक विकास के स्तर एवं परिवार

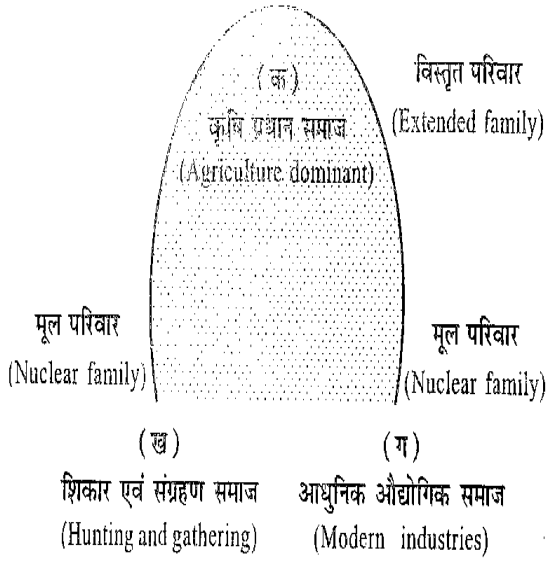

स्रोत : रिचार्ड, आर. क्लिटोन, ; दी फैमिली, मैरिज एण्ड सोशल चेन्ज, लेजिंग्टन, मास : डी.सी., हैल्थ, 1979.

आर्थिक विकास एवं परिवार के प्रकार

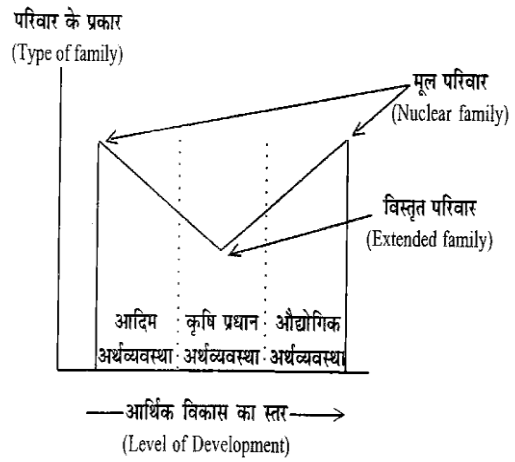

स्रोत : सिंह, जे.पी., ;समाजशास्त्र, अवधारणायें एवं सिद्धान्त, प्रिंटिस हॉल प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1999.

संयुक्त परिवार

गाँवों में संयुक्त परिवार की प्रधानता पायी जाती है। इरावती कर्वे के अनुसार ''संयुक्त परिवार वह है जिसमें दो या दो से अधिक पीढ़ी एक साथ निवास करती है, एक ही छत के नीचे सोते हैं, एक ही रसोई का बना भोजन करते हैं, सम्पत्ति पर सामूहिक अधिकार होता है, धार्मिक पूजा–पाठ में समानता पाई जाती है, और जो किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते हैं। परिवार के सभी सदस्य भोजन, उत्सव, त्योहार, और पूजन में सामूहिक रूप से भाग लेते हैं और परस्पर अधिकारों और कर्तव्यों से बन्धे होते हैं।''

संयुक्त परिवार को परिभाषित करते हुए डॉ. आई.पी. देसाई ने लिखा है ''हम उस गृह को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों (अर्थात् तीन या अधिक) के सदस्य रहते हों और जिसके सदस्य एक–दूसरे से सम्पत्ति, आय और पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों द्वारा सम्बद्ध हो।''

सामान्यतः संयुक्त परिवार का तात्पर्य एक ऐसे परिवार से हैं जिसमें अनेक पीढ़ियों के रक्त सम्बन्धी और विवाह द्वारा बने सदस्य सम्मिलित रूप से एक ही भवन में निवास व एक ही रसोई में बना हुआ भोजन करते हैं तथा जिनकी सम्पत्ति एवं आय सम्मिलित है और जो पारस्परिक कर्त्तव्य–परायणता के आधार पर एक–दूसरे से बंधे हुए हैं।

संयुक्त परिवार का महत्त्व

गाँवों में संयुक्त परिवार अनेक उपयोगी कार्य करता है। जिससे समाज व्यवस्था सुचारू रूप से चलती है। गाँवों में कृषि की प्रधानता के कारण संयुक्त परिवार का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। संयुक्त परिवार ही बच्चों का समुचित लालन–पालन में योग देता है। परिवार में दादा–दादी सरलता से बच्चों की देखरेख कर लेते हैं और बीमारी आदि के समय अपने अनुभव के आधार पर छोटा–मोटा ईलाज स्वयं ही करने में समर्थ होते हैं। संयुक्त परिवार समाजीकरण का कार्य भी करता है। बच्चा परिवार के विभिन्न सदस्यों के सम्पर्क में आकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करता है और मानवीय गुणों को सीखता है।

संयुक्त परिवार श्रम–विभाजन का भी अच्छा उदाहरण पेश करता है। स्त्रियॉ गृहकार्य और कृषि से सम्बन्धित छोटा–मोटा कार्य करती है तो पुरूष बाह्य कार्य और ऐसे कार्य करते हैं जिसमें अधिक शक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। बालक छोटे–मोटे कार्य द्वारा अपना योग देते हैं। संयुक्त परिवार अपने सदस्यों के लिए संकट काल का बीमा है। बीमारी, बुढ़ापा, दुर्घटना एवं शारीरिक, मानसिक अयोग्यता की स्थिति में परिवार ही भरण–पोषण और ईलाज का खर्चा उठाता है। वह विधवा और परित्याग बहिनों व बेटियों को भी संरक्षण प्रदान करता है।

संयुक्त परिवार अपने सदस्यों पर अनुशासन और नियंत्रण बनाये रखता है। वही सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों आदि का पालन कराकर संस्कृति की रक्षा भी करता है। संयुक्त परिवार व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पर रोक

लगाता है और उसके स्थान पर सामूहिकता को प्रोत्साहन देता है। सामूहिकता की भावना ही आगे चल कर सदस्यों में राष्ट्रीय प्रेम और एकता की भावना जागृत करती है। संयुक्त परिवार अपने सदस्यों के लिए मनोरंजन भी प्रदान करता है। छोटे बच्चों के साथ उनकी बोली में बोलकर सदस्य प्रफुल्लित महसूस करते हैं। संयुक्त परिवार में उत्सव और त्योहार भी चलते ही रहते हैं। बड़े परिवार में रिश्तेदारों का आना–जाना भी बना रहता है।

संयुक्त परिवार अपने सदस्यों को आर्थिक संरक्षण ही नहीं वरन् सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान करता है। संयुक्त परिवार समष्टिवादी समाज के लिए निर्माण में योग दिया है। अपनी उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के कारण ही संयुक्त परिवार आज भी ग्रामीण समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं।

परिवर्तनशील परिवार संरचना

परिवार समाज की आधारभूत एवं सार्वभौमिक सामाजिक संरचना है। यह आवश्यकता पूरी करती है तथा उन प्रकार्यों को निभाती हैं, जो कि समाज व्यवस्था की निरन्तरता, एकता एवं परिवर्तनों के साथ, परिवर्तन स्वरूप प्रौद्योगिकीय तथा आर्थिक अधिसंरचना में परिवर्तनों के साथ, परिवर्तन के स्वरूप एवं प्रकार्यों में अनुकूलनात्मक परिवर्तन आये हैं। संयुक्त परिवार से एकाकी परिवार का संक्रमण हो रहा है। विभेदीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से भूमिका संरचनाओं में व्यवस्थात्मक परिवर्तन होते हैं। संयुक्त परिवार की तुलना में भूमिका संरचनाओं के संयोग कम होते हैं, सत्ता व्यवस्था तथा नातेदारी सम्बन्धों के जाल भी भिन्न होते हैं।

कृषक समाजों में संयुक्त परिवारों की प्रधानता रही है। प्रायः ऐसे सभी परिवार पितृसत्तात्मक है। इस प्रकार के परिवारों में महिलाओं की सापेक्षतया अधिनस्थ स्थिति थी, सभी सदस्य अपनी गतिविधियों में एक बुजुर्ग परिवार का मुखिया द्वारा निर्देशित होते थे तथा सभी सदस्यों में अन्तःवैयक्ति सम्बन्ध सत्तात्मक थे। इस प्रकार के परिवारों में विवाह प्रणय निवेदन (Courtship) के बजाय नातेदारी के नियमों से निर्धारित होती थी और विवाह को व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध के बजाय परिवारों के मध्य सम्बन्ध का मामला समझा जाता था। इस प्रकार के समाजों में परिवार आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक गतिविधियों की इकाई भी होता था। इस प्रकार के पारिवारिक संगठन में व्यक्तिवाद एवं निजी स्वतन्त्रता की भावना अनजानी थी क्योंकि इस प्रकार के समाजों की आर्थिक संरचना बन्द थी तथा प्रौद्योगिकी नवाचार बहुत कम थे। लोक कथाओं, मिथकशास्त्रों, पहेलियों तथा लोक गीतों आदि के स्वरूप में विद्यमान ज्ञान के सम्पूर्ण भण्डार में बुजुर्गों द्वारा युवा पीढ़ी को मौखिक परम्परा के माध्यम से हस्तान्तरित किया जा सकता था। इस प्रकार से संयुक्त परिवारों तथा कृषक समाजों में सामाजिक प्रस्थिति तथा सुविधाओं के निर्धारण में समान्यतः आज एक महत्त्वपूर्ण तत्व थी। इस प्रकार कृषक समाजों (ग्रामीण समाजों) तथा संयुक्त परिवार में एक सहजीवी सम्बन्ध विकसित हो गया है। आर्थिक विकास, कृषि में क्रांति, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार आदि कारणों से परिवार की संरचना में एक मूलभूत परिवर्तन आया है।

जैसे–जैसे संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित होता है, परिवार में बच्चों का समाजीकरण एक नयी दिशा में लेता है। बच्चों की अब सापेक्षतया बहुत छोटे सामाजिक संसार में बड़ा होना पड़ रहा है। उसके दुलारने तथा देखभाल हेतु बहुत से नातेदार नहीं होते हैं। बच्चे के खेलने के साथी तथा उसके संगी–साथीयों को भी परिवार के बाहर से चुनना पड़ता है। परिवार के सभी सदस्य आर्थिक कार्य अथवा कृषि कार्य में लगे होते हैं तो बच्चों को कम आयु में ही अजनबियों से सम्पर्क स्थापित हो जाता है और बच्चे में भावनात्मक तनाव उत्पन्न होता है और इस कारण संयुक्त परिवार पुनः बढ़ रहे हैं।

परिवारों की संरचना में चक्रिय परिवर्तनों की प्रक्रिया एक ही समय में दो बिन्दुओं पर प्रकाश डालती है। प्रथम, भारतीय सामाजिक संरचना के अन्य स्वरूपों की भॉति समकालिक पारिवारिक संरचना में भी परिवर्तन के अनेक कारण हैं तथा द्वितीय, एकाकी परिवारों को सार्वभौमिक उद्विकास के रूप में, सार्वभौमिक प्रकार्य के रूप में मान लेना।

इस प्रकार संयुक्त परिवार की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तनों में एक समझौतावादी प्रतिमान देखा जा सकता है, एक ऐसा प्रतिमान जो भारतीय समाज में संरचनात्मक परिवर्तनों में भी देखा जा सकता है। जीवन साथी के चुनाव में निजी पसन्द के नियम को, मध्यम परिवारों में दफ्तरों तथा स्कूलों में बहार काम करने की पत्नी की स्वतन्त्रता, पति की सहमति और कभी–कभी पति के पत्नी के भी माता पिता के सहमति के पारस्परिक ढाँचे में काम करती है तथापि इस प्रकार के समझौते बिना तनाव के नहीं होते जो की सामाजिक परिवर्तन का एक अटूट हिस्सा है। इन परिवर्तनों के बावजूद संयुक्त परिवार का पारस्परिक विश्व दर्शन अभी प्रचलित है।

आर्थिक विकास और संरचनात्मक प्रभाव

आर्थिक विकास सीधा सम्बन्ध हमारे जीवन धारण के लिए आवश्कय साधनों से है। यही कारण है कि समाज के आर्थिक ढाँचों में परिवर्तन या विकास के साथ–साथ परिवार, विवाह, नातेदारी एवं जाति संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते रहते हैं। गाँवों का आर्थिक विकास मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है– प्राकृतिक संसाधन तथा मानवीय संसाधन। वास्तव में, देखा जाये तो आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान मानवीय संसाधनों का होता है। मानवीय प्रयत्नों के अभाव में किसी भी प्रकार की आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन सम्भव नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गाँवों का वास्तविक ह्रास उन गाँवों की भूमि अथवा पानी में, वनों या खाद्यान्नों में, पशुओं में, नहीं वरन् उस गाँव के स्वास्थ्य पुरूषों, बच्चों एवं स्त्रियों में निहित है।

आर्थिक विकास एवं परिवार प्रणाली

आर्थिक विकास के कारण पारिवारिक जीवन में अनेक परिवर्तन महत्त्वपूर्ण हो रहे हैं। कृषि में मशीनों का प्रयोग करना, सिंचाई के नवीन साधनों का प्रयोग करना, आदि के कारण गाँवों में संयुक्त परिवार का नाभीकीकरण की प्रक्रिया बढ़ रही है। आर्थिक विकास के कारण ग्रामीण

जीवन में आज अनेक ऐसी दशाएँ उत्पन्न हुई है जिनके प्रभाव से ग्रामीण परिवारों की परम्परागत संरचना तथा इनके प्रकार्यों में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न होने लगे हैं। वर्तमान गाँवों के परिवार संक्रमण की एक ऐसी स्थिति से गुजर रहे हैं जिससे एक ही परिवार के सदस्यों के बीच इसकी संरचनात्मक सम्बन्धी आस्था में मतभेद उत्पन्न हो गया है। दूसरी ओर, संयुक्त परिवार व्यक्ति की परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण भी अपनी उपयोगिता को बनाये रखने में असफल होने लगे हैं। वास्तविकता यह है कि आर्थिक विकास से संयुक्त परिवार के आकार, सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों, कर्त्ता की अधिकार व्यवस्था, परम्परागत कार्यों तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों आदि सभी क्षेत्र में परिवर्तन देखा जा सकता हैं।

आर्थिक विकास एवं पारिवारिक प्रकार्यात्मक परिवर्तन

गाँवों में संयुक्त परिवार की महत्ता पायी जाती है। संयुक्त परिवार अपने सदस्यों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। वर्तमान जीवन में संयुक्त परिवार व्यवस्था में यद्यपि अनेक दोषों का समावेश हो गया है, लेकिन जिन तत्कालीन परिस्थितियों में इस व्यवस्था का निर्माण हुआ है, उनमें निश्चय ही यह एक उपयोगी और अनेक सामाजिक व आर्थिक लाभ प्रदान करने वाली संस्था थी। आर्थिक विकास एवं आदि कारणों से ग्रामीण जीवन की परिस्थितियॉ आज बदल रही है। एक संस्था के रूप में अतीत में संयुक्त परिवारों में ग्रामीण जीवन के लिए इतने महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे, इन्हीं के कारण संयुक्त परिवारों को ग्रामीण जीवन का मौलिक प्रतिनिधि कहा जाता है। आज आर्थिक विकास, आधुनिकता, शिक्षा एवं नगरीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव से ग्रामीण संयुक्त परिवार के सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक मनोरंजनात्मक सभी कार्यों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये हैं।

कुछ समय पूर्व तक परिवार के विवादों का समाधान परिवार के वृद्ध व्यक्तियों के द्वारा किया जाता था लेकिन आज नगरों में स्थिति न्यायालय गाँवों के पारिवारिक विवादों का समाधान करने का मुख्य केन्द्र बन गया है। आर्थिक कार्यों पर भी आज ग्रामीण संयुक्त परिवारों का एकाधिकार नहीं रहा है। अब परिवार के व्यक्ति आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य संस्थाओं से करने लगे हैं। गाँवों में आज रेडियो, टी.वी., Android Mobile, स्मार्ट फोन, तथा चलचित्रों की लोकप्रियता बढ़ जाने के कारण मनोरंजन के क्षेत्र में भी संयुक्त परिवार निष्क्रिय संस्था रह गयी है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में बीमार व्यक्ति का ईलाज करने में स्वास्थ्य केन्द्र की भूमिका महत्त्वपूर्ण रूप से उभर रही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संयुक्त परिवार के विभिन्न प्रकार्यों में परिवर्तन हो रहा है।

आर्थिक विकास एवं विवाह

आर्थिक विकास से विवाह नामक संस्था अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं। आर्थिक विकास से गाँवों में शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने लगा है, जिससे गाँवों में विवाह से सम्बन्धित कानूनों की जानकारी प्राप्त होने लगी है। गाँवों में नगरीकरण की विशेषता को लोग अपनाने लगे हैं। यातायात एवं संचार साधनों के विकास के कारण अब गाँवों के लोग आसानी से बाजार आते हैं एवं नगरीय संस्कृति के रीति–रिवाजों से परिचित होने लगे हैं। कृषि में अधिक उत्पादन होने से अब गाँवों में होने वाले विवाह में अनेक प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

आर्थिक विकास एवं विवाह विच्छेद

प्राचीन काल में हिन्दू विवाह एक पूर्णतः धार्मिक संस्कार एवं जन्म जन्मान्तर का बन्धन माना जाता रहा है। जिसको कभी भी भंग नहीं किया जा सकता है। विवाह से सम्बन्धित अनेक धार्मिक क्रियाओं का समावेश था, किन्तु आर्थिक विकास से विवाह एक प्रकार से सामाजिक समझौता एवं मित्रता का सम्बन्ध बनता जा रहा है। प्राचीन काल में हिन्दू विवाह–विच्छेद करना पाप समझा जाता था लेकिन अब यदि पति–पत्नी के बीच व्यवहारिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते हैं तो वे विवाह–विच्छेद कर सकते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ है कि विवाह एक प्रकार का सामाजिक समझौता एवं मित्रता जैसा व्यवहार का रूप लेता जा रहा है। यह हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, विशेष हिन्दू विवाह अधिनियम 1956 आदि अधिनियमों के प्रभाव के साथ–साथ आर्थिक विकास का भी परिणाम है। गाँवों में आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं शिक्षित व्यक्ति ही विवाह विच्छेद करते हैं। ये लोग अपनी पसन्द से विवाह करते हैं और विचारों में ताल–मेल नहीं होने पर, दहेज पूर्ति नहीं होने पर विवाह विच्छेद कर लेते हैं। गरीब एवं अशिक्षित व्यक्ति आज भी हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानते हैं और वे विवाह–विच्छेद नहीं करते हैं। परिणामस्वरूप हिन्दू विवाह के धार्मिक संस्कार को प्रभावित करने में आर्थिक विकास एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में उभर कर सामने आया है, यहाँ तक की गरीब व्यक्तियों का विवाह ही बड़ी मुश्किल से हो पाता है, इसलिए वह विवाह विच्छेद करने की बात तो सोच ही नहीं सकते। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति हिन्दू विवाह को एक अटूट धार्मिक संस्कार के रूप में स्वीकार करते हैं जबकि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति विवाह को एक प्रकार से सामाजिक समझौता एवं मित्रता का सम्बन्ध मानते हैं।

आर्थिक विकास एवं जाति संरचना

जाति प्रथा ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार है। यह हिन्दूओं के सामाजिक संगठन की प्रमुख विशेषता रही है। गाँवों में जाति ही व्यक्ति के कार्य, प्रस्थिति, उपलब्ध अवसरों एवं असुविधाओं को तय करती है। ए.आर.देसाई के अनुसार ''जाति प्रथा गावों में पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन प्रणालियों, उनके निवास स्थानों तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों को निश्चित करती है। भूस्वामित्व भी जाति पर आधारित है। अनेक कारणवश प्रशासकीय कार्यों अधिकांशतः जाति के आधार पर बॉटा गया है। जाति ने लोगों के जटिल धार्मिक और लौकिक सांस्कृतिक प्रतिमानों को भी निर्धारित किया है और सामाजिक तथा ऊँच–नीच सम्बन्धों के ऐसे सूक्ष्म क्रमबद्ध स्तर स्थापित किये हैं कि सामाजिक संरचना एक विकास श्रेणीयों में विभक्त स्तूप (पिरामिड) की भॉति

दिखलाई पड़ती है, जिसका आधार स्थल अछूत जनसमूह है और जिसका शिखर कुछ ब्राह्मणों द्वारा निर्मित है।''

जे.एच. हट्टन ने लिखा है कि ''जाति एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज अनेक आत्म केन्द्रित और एक–दूसरे से पृथक इकाईयों में विभाजित रहता है तथा इन इकाईयों पारस्परिक सम्बन्ध उच्चता और निम्नता के क्रम में सांस्कृतिक रूप में निर्धारित होते हैं।'' डॉ. योगेन्द्र सिंह ने लिखा है कि जाति को संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक आधार पर समझा जा सकता है। उनका कहना है कि जाति की व्याख्या मूलतः स्तरीकरण की एक व्यवस्था है। एक ओर यह एक सामाजिक संरचना है जिसमें कई सदस्य होते हैं, कई इकाईयॉ होती है। इसमें गोत्र, नातेदारी, पत्नी प्राप्त करने की पद्धतियॉ आदि सम्मिलित है। दूसरी ओर जाति अपने आप में एक विचारधारा है, संस्कृति है, व्यक्ति की पहचान यानी उसका पहनाव, खान–पान, रीति–रिवाज सभी उसकी जाति से जाने जाते हैं। घुर्ये, जी.एस. ने जाति की सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखकर परिभाषित किया है कि जाति में वंशानुगत सदस्यता, जाति परिषद्, श्रेणीबद्धता, अन्तर्विवाह, भोजन व सामाजिक व्यवहार पर प्रतिबंध, पेशे के स्वतंत्र चुनाव पर प्रतिबंध तथा नागरिक व धार्मिक निर्योग्यताएं पाई जाती है। बूगल ने जाति की व्याख्या करते हुए कहा है कि जाति वंशानुक्रम आधार पर विशिष्ट श्रेणीबद्ध रूप से गठित समूह है। उन्होंने जाति की तीन विशेषताएं बताई हैं। (1) पैतृक विशिष्टता (2) श्रेणीबद्धता तथा (3) तिरस्कार।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जाति हिन्दू सामाजिक संगठन का एक प्रमुख आधार है, यह समाज में स्तरीकरण की एक व्यवस्था है। जाति प्रदत्त प्रस्थिति लिये हुये हैं जो जन्म पर आधारित है। जाति के संरचनात्मक दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं होता है, अपितु जाति के सांस्कृतिक पहलू में परिवर्तन हो रहा है।

आर्थिक विकास एवं जाति के परम्परागत व्यवसायों में परिवर्तन

पहले जाति व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवसाय पूर्व निश्चित होते थे, जन्म से ही व्यवसायों का निर्धारण होता था, योग्यता अथवा रूचि से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उच्च जातियों के लोग आवश्यकता होते हुये भी निम्न जातियों के पेशों को नहीं अपनाते थे लेकिन आर्थिक विकास की होड़ ने अथवा बढ़ती हुई विभिन्न आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अब लोगों के व्यवसायों में परिवर्तन होने लगा है।

आर्थिक विकास एवं जाति के सांस्कृतिक पक्ष में परिवर्तन

जाति के सांस्कृतिक पक्ष, मूल्यों, प्रतिमानों, विश्वासों, खान–पान, रीति–रिवाजों, पहनावा, और धर्म विधि को सम्मिलित करते हैं। आर्थिक विकास से गाँवों में जातियों की आर्थिक स्थितियों में सुधार होने लगे हैं। आर्थिक स्थिति में सुधार होने से निम्न जातियों ने उच्च जातियों के अनुसार अपने रीति–रिवाज, कर्मकाण्ड, खान–पान, मूल्यों, पहनावा में बदलाव उत्पन्न किया है। निम्न जातियों के लोगों ने गाँवों में मन्दिर बना कर पूजा पाठ करने लगे हैं। उच्च जाति एवं निम्न जाति में विवाह करने के तौर–तरीकों एवं कर्मकाण्डों में समानता देखने को मिलती है। अब ये जातियाँ उच्च जातियों से कम नहीं है अर्थात् इन्होंने उच्च जातियों के समकक्ष का दर्जा प्राप्त कर लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि गाँवों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को अपना रहे हैं।

निष्कर्ष

आर्थिक विकास का सामाजिक संरचना पर स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। आर्थिक विकास से गाँवों में एकाकी परिवार का महत्त्व बढ़ रहा है तथा परिवार के कुछ कार्यो का अन्य संस्थाओं को स्थानान्तरित होते जा रहे हैं। शिक्षा व बढ़ती हुई आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण स्त्रियों की पुरूषों के समान प्रस्थिति होने लगी है। अब स्त्रियॉ अधिक स्वतन्त्रता महसूस करती है तथा वे अनेक प्रकार के आर्थिक कार्य भी करने लगी हैं। परिवार को प्राप्त अनेक शक्तियों में शिथिलता आ रही है। आर्थिक कार्यों पर भी आज ग्रामीण संयुक्त परिवारों एकाधिकार नहीं रहा है। वर्तमान युग में व्यक्तिवादिता, निहित स्वार्थों तथा निजी सम्पत्ति की भावना के कारण परिवार के सदस्यों द्वारा व्यवसायों का चुनाव और आर्थिक लाभ–हानि का निर्धारण व्यक्तिगत आधार पर ही होने लगे हैं। परिवार एक आर्थिक उत्पादन की इकाई आज भी है, लेकिन इसका आर्थिक कार्य केवल उपभोग तक ही सीमित है। उत्पादन तथा विनिमय से सम्बद्ध नहीं है। गाँवों में आज टेलीविजन, रेडियो, Android Mobile, स्मार्ट फोन, ट्रॉन्जिस्टर के बढ़ जाने के कारण मनोरंजन के क्षेत्र में भी संयुक्त परिवार निष्क्रिय संस्था रह गयी है। वास्तविकता यह है कि गाँवों के संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तनों का प्रमुख कारण यह है कि संयुक्त परिवार आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल सिद्ध हो रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. *फैरिस, रॉबर्ट, ; हैण्डबुक ऑफ मॉडर्न सोश्योलॉजी, प्रिंटिस हाल, इंग्लवुड क्लिफ न्यू जर्सी, 1964*
2. *नोवॉक, डेविड ; सोश्योलॉजीकल एप्रोच टु इकॉनोमिक डवलपमेन्ट, इन नोवॉक डेविड (ईडि.), डवलपमेन्ट एण्ड सोसायटी : दी डायनामिक चेन्ज, 1964*
3. *लेविस, डब्ल्यू. ए. ; दी थ्योरी ऑफ इकॉनोमिक ग्रोथ*
4. *मैकाइवर एण्ड पेज ; सोसायटी इन एनालेसिस, नई दिल्ली, 1985*
5. *दुबे, एस.सी. ; मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993*
6. *कर्वे, इरावती, ; किनशिप ओर्गेनाइजेशन इन इण्डिया,रिवाइज्ड एडिसन, एशिया पब्लिसिंग हाऊस, बॉम्बे, 1965*
7. *देसाई, आई.पी. ; दी ज्वाइंट फेमिली इन इंडिया, सोश्योलॉजी बुलेटिन, वॉल्यूम, वी.नं. 02, सितम्बर, 1956*
8. *कापडिया, के.एम.; मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे, 1966*
9. *मेयर, लूसी ; सामाजिक नृ विज्ञान की भूमिका, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, बोम्बे, 1977*

10. *मजूमदार एण्ड मदन ; सामाजिक मानवशास्त्र परिचय, हिन्दी अनुवाद गोपाल भारद्वाज, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1999*
11. *मुरडोक,जी.पी. ; सोशल स्ट्रेक्चर, मेकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1981*
12. *फॉक्स, रोबिन ; किनशिप एण्ड मैरिज, बाल्टीमोर : पैंग्वीन बुक्स, 1974*
13. *देसाई, ए.आर. ;रूरल सोश्योलॉजी इन इण्डिया, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1968*
14. *हट्टन, जे.एच. ; कास्ट इन इण्डिया : इट्स नेचर फंक्शन एण्ड ओरिजन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे, 1961*
15. *सिंह, योगेन्द्र, ; सोशल स्ट्रेटीफिकेशन एण्ड चेन्ज इन इण्डिया, मनोहर बुक, न्यू देहली, 1977*
16. *घुर्ये, जी.एस. ; कास्ट, क्लास एण्ड ऑक्यूपेशन, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1961*
17. *बूगल, सी. ; दी ॲसेन्स एण्ड दी रियलिटी ऑफ दी कास्ट सिस्ट्म, इन कॉन्ट्रीब्यूशन टु इण्डियन सोश्योलॉजी, नं. 02, 1958*